

धर्म का अर्थ और विकास

डॉ० रामाशीष मालाकार सहायक प्रोफेसर,

दर्शनशास्त्र विभाग, ए० एस० कॉलेज, देवघर,

झारखण्ड।

धर्म एक अतिव्यापक शब्द है जो वस्तुतः मूलरूप से एक रचनात्मक उदात्तवृत्ति है। यह कहीं बाहर से नहीं आता वरन व्यक्ति के अभ्यन्तर से ही उदित होता है। धर्म के लिए अंग्रेजी शब्द रिलीजन है जिसका शाब्दिक अर्थ है - पुनः बाँधना (Boundness)। रिलीजन शब्द लैटिन भाषा के रैलिगेयर (Religare) से व्युत्पन्न है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से रिलीजन का अर्थ है R + लिगेयर (R = वापस और लिगेयर = बाँधना) इस प्रकार व्युत्पत्ति मूलक अर्थ के दृष्टि कोण से रिलीजन का आशय है जो मनुष्य को परस्पर जोड़ता है, जो मनुष्य के मानसिक एवं भौतिक पक्ष को सुसंगठित करता है एवं जो मनुष्य (सीमित) को ईश्वर (असीमित) से संबंध स्थापित करता है। रिलीजन के रि से यह बोध होता है कि ससीम और असीम मानव और ईश्वर मूल रूप से एक ही है। केवल अस्थायी रूप से पृथक् हो गये हैं। मनुष्य की धार्मिक चेतना के तीन पक्ष होते हैं, ज्ञानात्मक क्रियात्मक और (भावनात्मक) धर्म में इन तीनों ही तत्त्वों का होना अनिवार्य है।

भारतीय संदर्भ में धर्म पाश्चात्य संदर्भ में प्रचलित रिलीजन से भिन्न है। भारतीय संदर्भ में धर्म को शाश्वत सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के रूप में देखा गया है। यहाँ धर्म का आशय एवं कर्तव्यपालन सद्-आचरण से है। मनु ने धर्म के लक्षणों को बताते हुए धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, इन्द्रिय निग्रह, सत्य, अक्रोध आदि का उल्लेख किया है। वैशेषिक दर्शन में कहा गया है जिससे भौतिक कल्याण और आध्यात्मिक कल्याण दोनों हो, वही धर्म है। धर्म को चार पुरुषार्थों में प्रथम स्थान दिया गया है। और अर्थ व काम की प्राप्ति धर्म के अनुरूप ही करने की बात की गयी है। यही कारण है कि जब पाश्चात्य अवधारण सेक्युलरिज्म (Secularism) का भारतीय संविधान की प्रस्तावना में हिन्दी रूपान्तरण किया गया तब उसके विकल्प के रूप में पंथ निरपेक्षता शब्द का प्रयोग किया गया। धर्म निरपेक्षता शब्द का नहीं क्योंकि भारतीय संदर्भ में धर्म के अर्थ को ध्यान में रखकर धर्म से निरपेक्ष या तटस्थ नहीं किया जा सकता। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि धर्म सर्वव्यापक अभिवृत्ति है जो अलौकिक आदर्श पूर्ण विषय के प्रति आस्था पर आधारित होती है। और जिसके प्रति आत्मबधन और वचन बद्धता उपासना या समाधि के द्वारा अभिव्यक्त तथा दृढ़ किया जाता है। रिलीजन शब्द का उचित पर्याय संस्कृत का धर्म शब्द नहीं है। यह धर्म संस्कृत के घृ धातु से बना है जो धारण करने का अर्थ ध्वनित करता है। शब्दिक अर्थ की दृष्टि से धर्म को गुणों के धारणाकरण की एक प्रक्रिया माना जा सकता है। महाभारत में कहा गया है धारणात्थर्मित्याहु! अर्थात् धारण करने वाली वह चीज है जिस पर किसी पदार्थ का अस्तित्व अवलंबित है, वह धर्म है। उदाहरण के लिये आग का अर्थ अगत्व या दाहकता या उष्णता है क्योंकि आग का अस्तित्व उसकी उष्णता पर ही आश्रित है।

धर्म का काल क्रम के साथ विकास होता चला गया। कुछ विद्वानों के अनुसार धर्म की उत्पत्ति भय से मानी जाती है। जो आगे चलकर प्रेम का स्थान ले लेती है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर मनुष्य ने जो कुछ भी प्राप्त किया है। अथवा जो कुछ भी उपलब्ध है उसकी प्रक्रिया धर्म नहीं है। अपने विकसित स्वरूप में यह अप्राप्त को प्राप्त करने की अज्ञेय को ज्ञात करने की प्रक्रिया है। धर्म शुद्ध एवं निःस्वार्थ भाव से व्यक्ति को किसी रहस्यात्मक लक्ष्य से जोड़ता है। मुक्ति, निर्वाण एवं ईसाइयों की ईश्वर से एकता की बात सभी में एक आध्यात्मिक तृप्ति मिलती है। कुछ विचारक धर्म को वैज्ञानिक विकास की एक अवस्था मानते हैं। व्यक्ति का धार्मिक असंतोष ही उसके वैज्ञानिक विकास का स्त्रोत है। मानवीयमहाभारत में कहा गया है धारणात्थर्मित्याहु! अर्थात् धारण करने वाली वह चीज है जिस पर किसी पदार्थ का अस्तित्व अवलंबित है, वह धर्म है। उदाहरण के लिये आग का अर्थ अगत्व या दाहकता या उष्णता है क्योंकि आग का अस्तित्व उसकी उष्णता पर ही आश्रित है। धर्म का काल क्रम के साथ विकास होता चला गया। कुछ विद्वानों के अनुसार धर्म की उत्पत्ति भय से मानी जाती है। जो आगे चलकर प्रेम का स्थान ले लेती है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर मनुष्य ने जो कुछ भी प्राप्त किया है। अथवा जो कुछ भी उपलब्ध है उसकी प्रक्रिया धर्म नहीं है। अपने विकसित स्वरूप में यह अप्राप्त को प्राप्त करने की अज्ञेय को ज्ञात करने की प्रक्रिया है। धर्म शुद्ध एवं निःस्वार्थ भाव से व्यक्ति को किसी रहस्यात्मक लक्ष्य से जोड़ता है। मुक्ति, निर्वाण एवं ईसाइयों की ईश्वर से एकता की बात सभी में एक आध्यात्मिक तृप्ति मिलती है। कुछ विचारक धर्म को वैज्ञानिक विकास की एक अवस्था मानते हैं। व्यक्ति का धार्मिक असंतोष ही उसके वैज्ञानिक विकास का स्त्रोत है। मानवीय विकास की गति विज्ञान की विकसित अवस्था तक आ गई है लेकिन धर्म का अस्तित्व आज भी अपने स्थान पर रूढ़ि परम्परा अंधविश्वास एवं सम्प्रदाय की कुत्सित भावना से सम्बद्ध हैं। धर्म दर्शन की दृष्टि से जीवन अदृश्य शक्तियों द्वारा संचालित

होता है, जो भौतिक अथवा अन्य सभी शक्तियों से शक्तिमान एवं समर्थ है। धर्म अपनी प्रकृति में शुद्ध रूप से व्यक्तिगत अनुभूति है, किन्तु ऐतिहासिक क्रम के अनुसार यह स्थिति हो गई है कि जब प्रक्रिया एक सामूहिक प्रयत्न में बांधकर चलने लगा। किन्तु जब समूह टूटने लगे और धार्मिक व्यापकता आने लगी तो धर्म विरोधी मूल्यों ने तीव्रता से अपना विस्तार करना आरंभ कर दिया। सामूहिक एकता के पीछे कोई स्वतंत्र चेतना तो कार्य करती नहीं थी। इसलिए विकास की स्थिति में भी निर्जीवता और निष्प्राणता को बढ़ावा मिला। व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन - विरोधी मूल्यों के साथ गतिशील होने लगा। दर्शन का नियन्त्रण धर्म हो गया। दार्शनिक ऊहापोह में डूबते जीवन को कोई अर्थ नहीं दे पाया और अन्ततः उसने अपने प्रत्येक तर्क को कोई ईश्वर के चरणों में ले जाकर झुका दिया। दर्शन के क्षेत्र में हीगल और उनके अनुयायियों में परमतत्त्व के चरणों में सिर झुकाने की यह परम्परा पाई जाती है। हीगल ने धर्म को प्रख्यात दर्शन कहा। उनके पूर्ववर्ती कान्ट ने धर्म की हमारे सारे कर्तव्यों को परम आदर्श के रूप में मान्यता दी। हीगल के पश्चात् मार्क्स ने दर्शन के क्षेत्र में बगावत का झण्डा खड़ा करते हुए कहा कि " धर्म " मनुष्यों के मस्तिष्क में उन वाह्य शक्तियों का काल्पनिक प्रतिबिम्ब है, जो उनके दैनिक जीवन को नियंत्रित करती है। ऐसा प्रतिबिम्ब जिसमें लौकिक शक्तियाँ अलौकिक शक्तियों का रूप ग्रहण कर लेती है। आदमी धर्म को बनाता है, धर्म आदमी को नहीं। आदमी ने पशु से लेकर वृक्ष तक की पूजा की। क्या यह पूजा मनुष्य को नीचे गिराकर पशु से नीचे नहीं पहुंचा देती? क्या यह पशु को मनुष्य का ईश्वर नहीं बना देती? घूट जरा कड़वी थी फिर भी बहुतो ने इसे पीया मार्क्स का मस्तिष्क तो इस शब्द से इतना बौखला चुका था कि वे इस शब्द को ही व्यवहार से वहिष्कृत करना चाहते थे, धर्म पीड़ित प्राणी की कराह है। वह उस हृदयहीन जगत् का हृदय है। ठीक उसी प्रकार जैसे आत्महीन परिस्थितियों की आत्मा है।

वह जनता के लिए अफीम है। किन्तु उसके व्यवहारिक वहिष्कृति की चेष्टा तो व्यर्थ थी क्योंकि उन्होंने भी उसके खिलाफ बहुत कुछ लिखकर इसके पुर्न मूल्यांकन का ही प्रश्न उठाया और यह सही भी है कि मार्क्स ने जो धर्म संबंधी निषेधात्मक पक्ष से ही चिंतन की प्रक्रिया रूक जाने वाली नहीं है। क्योंकि इतिहास के आरंभ से ही धर्म ने समाज के प्रत्येक स्तर एवं पक्ष को प्रभावित किया है। धर्म ने राजनीतिक, कला, संगीत समाज की सभी प्रक्रियाओं पर एक समय तक और एक हद तक अपनी प्रभुता स्थापित की हैं प्रारंभिक दर्शन की क्रियात्मकता जो नैतिकता से आच्छादित होकर चली थी सामान्यतया धर्म के रूप में स्वीकार की जाती थी। किन्तु आज धर्म से दर्शन मुक्त है। नैतिकता परिभाषा में बांध नहीं पा रही है। कामटे स्पेन्सर आदि ने इसकी व्याख्या प्राकृतिक आधारों पर की हैं आज स्थिति यह आ गई है कि धर्म अकेला हो गया है। कला जो धर्म से हाथ मिलाकर चली आज नैतिकता और धार्मिक समर्थन की अपेक्षा तक नहीं कर रही है। एक समय था जब कला धर्म की आज्ञा के बिना सांस तक नहीं ले सकती थी। धर्म की चेरी संगीत जो इसका यशगान गाया करती थी। अपनी रागिनियों के दरवाजे धर्म के लिए बंद कर दिए हैं। आज धर्म की स्थिति जर्जर हो गई है। धर्म शुरू से ही दो कोण का रहा है। एक नीति का दूसरा रीति का। ईसा, बुद्ध, कम्प्यूसियस ये सभी नीतिज्ञ थे तथा इसके पीछे चलने वाले लोग रीतिज्ञ हैं। धर्मों के भीतर दो भागीय झगड़ा उन्हीं रीतियों की देन है। यह झगड़ा और भेद ही धर्म के अधः पतन की जड़ है। यही कारण है कि धर्म कालान्तर में सौ - सौ बड़े फनवाले नागों की भयानक आकृतियाँ ग्रहण करने लगा है। धर्मों और धर्म के बीच का अंतर ठीक वैसा ही है जैसा कि विज्ञान और विज्ञानों कला और कलाओं के बीच का लेकिन जहाँ अन्य विज्ञानों में हमें शांति मिलती है धर्मों में गतिरोध एवं परस्पर दुःख मिलता है विज्ञानों और धर्म के बीच इसी अंतर से ही धर्म और धर्मों के बीच का अंतर भी स्पष्ट दिखाई देता है। उपर्युक्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि धर्म बहुत व्यापक शब्द हैं आजकल के ज्यादातर बौद्धिक मानवतावादी धर्म को ही अपना धर्म मानते हैं।

संदर्भ

- विवेकानन्द साहित्य (द्वितीय खण्ड) अद्वैत आश्रम मायावती , 1963 , पृ0-297
- अमरकोश , श्लोक 138 पृ0-42 , श्लोक -24 पृ0-52
- महाभारत - कर्ण पर्व 69/58
- चाणक्य नीतिसूत्र -233
- रामचरित्र मानस अयोध्याकाण्ड
- Marx Contribution to the Critic of hegals philosophy of Right